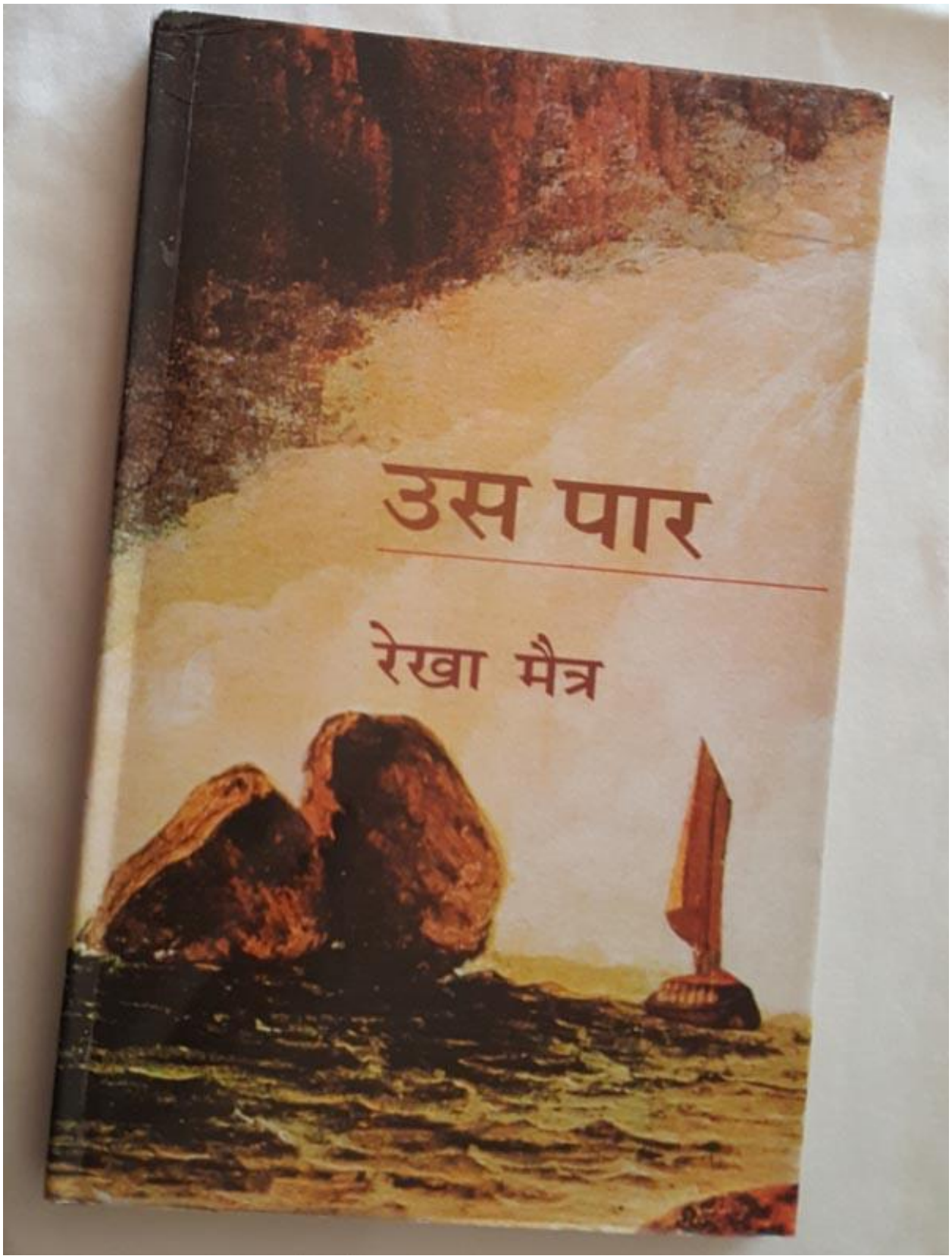
उस पार
रेखा मैत्र

...उस पार की रेखा

यही कोई सन् 1970 के आसपास सुश्री प्रमिला भटनागर ने एक युवती का परिचय मुझसे करवाया, "ये है कुमारी रेखा सेठ। मेरी अंतरंग। मिलो।" शायद कहीं मेरे श्रोता समूह में शामिल थी।

नागपुर का 'विश्व हिन्दी सम्मेलन'। एकाएक सामने खड़ी एक तन्वंगी मुझसे पूछती है, "पहचाना मुझे?" मैं कुछ कहूँ उससे पहले वही बोल पड़ती है, "मैं रेखा सेठ..." और प्रमिला, सरोज जैन एवं श्रीमती सुशील चन्द्रिका बैरागी की खिलखिलाटों में हम लोग डूब जाते हैं। श्रीमती बैरागी पूछती है, "ये तीनों कुँवारी कन्याएँ मेंहदी कब रचाएँगी?" और फिर खिलखिलाहटें। यह सन् 1975 रहा।

बात आई गई हो गई।

जीवन चलता रहा।

सन् 1970 से सन् 2000 तक का तीन दशकीय जीवन प्रवास।

एक दिन प्रमिला मेरे सामने कुछ पृष्ठ छाया प्रतियों के रखती है। पूछता हूँ, "क्या है?" उत्तर मिलता है, "रेखा की कविताएँ हैं।" "कौन रेखा?"

"अरे! याद करो वही अपनी रेखा सेठ?" पत्नी यादों को ताज़ा करती है। नागपुर का सन्दर्भ देती है। खुद ही पूछती है, "कहाँ हैं?" उत्तर मिलता है, "अमेरिका में।"

"कुछ मेहंदी-हल्दी-मंगलसूत्र रचा-बसा या बँधा कि नहीं?" प्रमिला आश्वस्त करती है, "अब वह रेखा मैत्र है।" और फिर रेखा जी की मित्र प्रमिला का आग्रह आता है।

"रेखा की कविताओं का संग्रह आ रहा है, आप कुछ लिख दें।"

मैं पांडुलिपिनुमा छाया पृष्ठ रख लेता हूँ।

छपी-छपाई पुस्तक अब आपके हाथों में है। विगत 25 सालों से मैंने रेखा को देखा नहीं है। और तो और उसकी तस्वीर भी नहीं देखी। लेकिन 'उस पार' की इन कविताओं में मैं रेखा को पढ़ ही नहीं देख भी रहा हूँ। देख ही नहीं समझ भी रहा हूँ। रेखा सेठ! रेखा मैत्र!! 'उस पार' की रेखा! सेठ से मैत्र तक का सफर। भारत से अमेरिका तक की यात्रा। पड़ाव-दर-पड़ाव सतत् सोचती, लिखती एक और रेखा। रेखा के भीतर एक रेखा—दो रेखा और फिर कविता दर कविता गणित के अंक पार करती रेखा। कहीं कलकल करती बहती रेखा तो कहीं छलछल करती आँसू पोंछती रेखा। कही ठिठकी रेखा तो कहीं सरपट रेखा। कहूँ कि एक छटपटाती रेखा! 'उस पार' की किसी भी कविता को पढ़िए। लगेगा कि कुछ छूट-सा गया है। रेखा और भी कुछ कहना चाहती है और पृष्ठ पलटते ही वह फिर से कुछ बोलने लगती है। नई छटपटाहट से नया उच्छ्वास! नए पड़ाव पर नए क्षण। नई बेचैनी-नई घुटन-नई अभिव्यक्ति। अन्त तक और अन्ततः अतृप्त रखती रेखा। लगता है रेखा एक अन्तहीन प्रांजल प्रवाह में बहती चली जा रही है। इस 'उस पार' का कोई अता-पता उसे भी नहीं है। दोनों किनारों पर अपनी चर्या में व्यस्त उसके 'पाठक' उसे अवगाहहित भी देख रहे हैं और उससे पूछ भी नहीं पा रहे हैं कि वह कहाँ जा रही है? उसकी जीवन यात्रा का लक्ष्य क्या है? कविताओं में व्यक्त होती इस अलौकिक भटकन को विश्राम कहाँ मिलेगा? तब रेखा के पास फिर कुछ कविताएँ होंगी और हमारे सामने ऐसा ही कोई संग्रह। जिज्ञासा से हमें निहारती पुकारती—रेखा।

रेखा की यह आत्म-विकृलता, यह अलौकिक अभिव्यक्ति, अध्यात्म के स्तरों को छूती अनासक्त आसक्ति जीवित रहे। हमारी शुभ कामनाएँ। सात समन्दर पार कलम चलाती 'उस पार' की रेखा को इस पार बैठे बसे उसके पाठकों की बधाईयाँ!

नवरात्रि पर्व, 2057 वि.
2 अक्तूबर, 2000 गांधी जयंती

—बालकवि बैरागी

आदत

जैसे अँधेरे में देखने को
आँखें ठहरानी होती हैं
वैसे ही स्वयं तक पहुँचने को
स्वयं को टटोलना होता है
बड़ी मुश्किल से होती है
मुलाकात खुद से
एक बार जो हरी झंडी दीख जाए
तब आना-जाना
बड़ा सहज हो आता है
ठीक वैसे ही जैसे
कलकत्ता के बाशिंदों को
दिनचर्या में लोडशेडिंग से
कोई फर्क नहीं पड़ता!
बस, आदत बनाने की बात होती है!

आकांक्षा

सघन वन के बीच कहीं
चुपचाप बहती झील सी
मैं भी रह सकूँ कभी
किसी कोने में अकेली!
स्वयं में आकंठ डूबी
कहीं किसी सागर से
साथी की याद जो आई
जल का रुख कर दिया उस ओर!
अपने अस्तित्व को विलीन कर
भरे-भरे कुछ पल जिए
फिर वही निस्तब्धता चहुँओर!

आखेट

ज़िन्दगी मेरे पास
एक शिकार की सूरत लिए आई
और...
मैं ज़िन्दगी के पास
एक शिकारी की सूरत लिए
उसे क़ैद करने की फिक्र में
भटकती रही तमाम उम्र
मुझसे बच निकलने की
कोशिश करती फिरी वो
ये लुकाछिपौआय का खेल
अभी भी जारी है
कौन जाने कब वो
मेरे हाथ आ जाए!

आतंक

उसके चेहरे को देखकर लगा
अगर ज़रा सा उकेरूँ
तो खरोंच में खून नहीं
क्रोध रिस कर बाहर आएगा!
जमा हुआ गुस्सा नाहक तो नहीं था
डेनवर के स्कूल में उसका बेटा
गोली का बेवजह शिकार हुआ था!
हर साल अप्रैल का महीना
दहशत भर देता है
दिल और दिमाग में
किस बार कौन से स्कूल की
बारी आएगी
कौन जाने?
पूरा देश कब डेनवर में
बदल जाएगा
कौन जाने?
अब कच्चे नहीं पड़ते
खौफ़ के रंग
अप्रैल में खिले ट्यूलिप
जमीन से पानी की जगह
कब खून पा जाएँ
कौन जाने?

अमरलता

तुम जो अपने सशक्त वृक्ष से
बेल सी लिपटी रहीं ताउम्र
क्या उसे भी तुम्हें सहारा देने की
आदत सी पड़ गई थी
कुछ पलों को तुमने
उसका साथ क्या छोड़ा
वह जीवन से छूट गया!

बदलता रिश्ता

कभी...दर्द से मेरी
ख़ासी दुश्मनी थी
उसकी आहट, चहलक़दमी
मेरे दिल और दिमाग़ को
परेशान कर डालती थी!
अब...जब देखती हूँ
उसे अपने जिस्म की
सीढ़ियाँ चढ़ते
पाँव से घुटने तक
फिर कमर तक आते
पूछती हूँ, कभी उससे
अतिथि! इस बार
तुम्हारा कितने दिन
ठहरने का कार्यक्रम है?

बदलते अर्थ

बर्फ़ ही बर्फ़
एक भुतहा सन्नाटा
मकानों के चारों ओर
बर्फ़ के बने 'आइसिकल'
पहली बार जब देखे थे
लगे थे खूबसूरत
झाड़फानूस से!
आहिस्ता-आहिस्ता उनके अर्थ
बदलने लगे मेरे इर्द-गिर्द
फिर इन्द्रधनुष से लगे
जब रोशनी की किरणें
उन पर से गुज़रीं!
अब तीर से दीखते हैं
पता नहीं कब
सीना चीरकर
निकल जाएँ
बचाया करती हूँ
ख़ुद को इनसे!

बंजारा

निरंतर चलते रहना
जीवन दर्शन है!
ये सूत्र बचपन में मुझे
किसी ने थमाया था!
कब वो मेरी पकड़ से
छूट गया, पता नहीं
हठात्, उस बंजारे को देखा
अपने बनाए तम्बू को तोड़ता
तीन ईंटों के चूल्हे को
अस्त-व्यस्त करता
अपने झोले को समेटता
गाता-गाता चला
कोई और ठौर तलाशता
तब उसमें मुझे—
सृजन, संरक्षण, संहार
साथ दिखाई दिया
उसने एक जीवित फलसफा
मुझे पकड़ा दिया!

भटकन

मैं और ज़िन्दगी
एक-दूसरे की उँगली थामे
साथ निकले ही थे—
अचानक...
भरी भीड़ में
उसका हाथ छूट गया!
अब मैं, उसकी तलाश में
इधर-उधर भटकती फिरती हूँ?
कभी मिले वो तो पहचान लेगी न?
उसे तलाशती मैं
बुढ़ा गई हूँ, और वो...
जवान हो गई होगी!

भेंट

प्यार के उपहार में
आँसू जो मिले मुझे
देखो इन्हें आँखों में
अंजन-सा आँज लिया
इनमें तो जीवन के
सारे रंग धुले हैं!
जब तुम्हारे प्यार की
किरणें पड़ीं इन पर
सारे इन्द्रधनुषी रंग
साथ झिलमिलाते हैं!
यूँ तो सहेजा है
बड़े जतन से इन्हें
फिर भी एक सोच-सा
घिरता है आसपास
कहीं न ढलक जाएँ
मेरे अनजाने में!
खाली एक बात मेरा
कहने का मन है
भेंट तुम्हें आँसू की
देनी थी मुझे जो
इनको सहेजने का
जतन तो सिखाना था...!!

बिजली का बटन

तुमने तो बस मुझे
यक़ीन ही दिलाया था
मेरे न रहने पर तुम
अपने तन-मन की
ठीक-ठाक देख-रेख करोगे!

जब मैंने तुम्हें चाहा है
ये भी तो जानना होगा
मेरे बाद तुम्हारा क्या बनेगा?
अस्तु, तुम्हारे जवाब से निश्चिन्त होता था!

फिर, तुम्हारा उत्तर सुनकर
मन के भीतर कहीं से
कुछ बिजली के बटन-सा
खटाक् से बुझ क्यों गया?

बॉनसाई

बॉनसाई से
बौने सम्बन्ध
नहीं चाहिए मुझे
जिन्हें इतनी ही खाद
इतना ही पानी दिया जाए
जो इन्हें जीवित तो रखे पर
इनके पनपने फैलने का
नियन्त्रण अपने हाथ में रहे!
मुझे इनमें
सैनिक शिक्षा से प्रताड़ित
शिशु दिख पड़ते हैं
बाहर-बाहर से बढ़ते
और भीतर संवेदना शून्य होते!
मुझे चाहिए
वट वृक्ष से
फैलते सम्बन्ध
जितने भीतर बढ़े
उतने बाहर दिखें!
भीतरी सौन्दर्य की छटा
बाहर बिखेरते से
दे सकोगे
ऐसे दर्पण से
साफ सम्बन्ध मुझे?

चाबी

कई बार सोचा है मैंने—
अपनी हँसी और आँसू की चाबी
तुम्हें क्यों दे रखी है?

तुम अक्सर ही उसका
ग़लत इस्तेमाल कर जाते हो!
जब भी कभी छोटी-छोटी
खुशियाँ देकर ढेर सारी
प्रसन्नता देने की बात आती है
तुम्हारी कृपणता मुझे
कहीं से छील जाती है!
जाने-अनजाने में तुम्हारा
कुछ कहा-सुना
मुझे अक्सर रुला जाता है!
सवाल है, अब तुमसे
कैसे अपनी चाबी हासिल करूँ?

चाँद

मन के आकाश में
चौथ के चाँद से
उग आए हो तुम!
ज्योत्सना की फुहार से
भीग गया तन-मन!
जी भर निहार सकूँ
इतनी अब जान कहाँ?
प्रतीक्षा की अवधि
युगों सी लम्बी थी
तब भी तुम आए तो...!
तुम्हें शत्-शत् प्रणाम्!!

चिर स्मृति

मुझे कुछ कहना था तुमसे--
जीवन की साँझ वेला में
जब बार्धक्य अपना सर उठाने लगे
दे सको तो अपना आर्द्र हाथ देता
मेरी ख़ामोशी को खुद से खुद की बातें जानना
बुढ़ापे की थकन को आलस्य न सोचना
चेहरे की झुर्रियों को लम्बे अनुभव से गढ़े
मील के पत्थर मानना
लड़खड़ाते कदम तन की विवशता
तो हो सकते हैं मन की नहीं
विदा के मायने अनुपस्थिति ही नहीं
चिर स्मृति भी तो है!

दर्द

कभी-कभी कोई दर्द
ऐसा भी होता है
चोट के वक़्त शिद्दत का
अहसास नहीं दिलाता
वक़्त के साथ उसकी जड़ें
दिल और दिमाग में
चुपचाप फैलती जाती हैं
फिर वजूद का अहम् हिस्सा सी
वर्तमान में लटकती हैं हमेशा
ऐसा ही कुछ मीठा-मीठा सा है
तुम्हारा दिया दर्द...!

डरे पंछी

यहीं-इन्हीं पेड़ों के आसपास
वक़्त कहीं छिपा हुआ खड़ा था
पेड़ों की आड़ से उसने आवाज़ दी
चौंककर देखा मैंने
प्यार की निश्चितता के प्रतीक से
सुर्ख़ गुलमोहर वृक्षों की शाखों पर
बिछे हैं दूर-दूर
ऐसा क्यों हुआ मगर
पाँव हैं कि बढ़ते नहीं
भर लेने को ऋतुराज को बाँहों में
सहमकर डरे-डरे पंछी से
दबे पाँव बढ़ते हैं पाँव दो
कहीं न हो ये मोहपाश...!

दशरथ पुत्र के प्रति...!

राम!

तुम्हारी छवि दशरथ पुत्र-सी
जब-जब मेरे मानस पर उभरती है
जीवन के घोर अन्धकार में
आशा की किरण विद्युत-सी चमकती है
सोच पाती हूँ इस हाड़मांस के पुतले के लिए
असम्भव नहीं कुछ भी कर पाना!

माँ के अविचार से प्रजा का अन्याय तक
दशमुख से दशरथ तक सभी के अविवेक
अपने विवेक से पराजित करता
मेरे पास आ खड़ा होता है वह चेहरा!

तुम्हें मैं उसी राम में जब पाती हूँ
सम्भव हो पाता है मेरे लिए
तुम्हारी अनुत्तरित लीलाओं को जीना!

क्षमा करना मुझे, जो अवतार नहीं माना
जानते हो तब मुझे–
बाली बध की त्रुटियाँ दीख पड़ती हैं
सीता-सी सति के प्रति
तुम्हारा अन्याय बेध जाता है
तब मैं...
अवतार को क्षमा नहीं कर पाती
बस, इसी से दशरथ पुत्र-सा चाहा है तुम्हें!

कल्याण के लिए

—रेखा मैत्र

दीर्घतम दिन

लम्बा दिन पहाड़ सा...
हवा ऐसी नहीं कि पत्ता भी हिले
दूर-दूर तक बिछी रेत
उमस ऐसी कि बेनहाया
जिस्म नहाया-सा लगे!
हठात् सागर की मछली ने
ये सारा तमाशा देखा
क़रीब से देखने की
कोशिश में बाहर जो आई
लौटकर वापस न जा पाई!
तड़प-तड़प कर उसने
तट पर ही दम तोड़ दिया
मैं तमाशबीन-सी खड़ी देखती रह गई
उसे बचाने के लिए कुछ भी न कर पाई
लगा, कहीं ये उसकी भी
देश छोड़ने की सज़ा तो नहीं?

एक प्रतिक्रिया...!

रवीन्द्रनाथ ठाकुर!
तुमने तलाशा मौत के बीच जीवन
आकाश-वाताश-फूल-वनस्पति
सबको किया प्राणवंत
अपनी रचनाओं में!
कैसा अन्याय है ये—
ऐसे महामानव के वंशज हम
खोजते हैं जीवन में मृत्यु को
देखते हैं सर्वत्र पराजय को
वाज़िदअली शाह से
निरुपाय खड़े हैं
संघर्ष के सारे हथियार डालकर
कूटनीति, राजनीति षड्यंत्रों के मायावी
दुश्मन आते देख कर देते हैं
खुद का आत्म समर्पण!!

फिसलन

इन दिनों मन के
भीतरी कोने में
फिसलन सी हो आई है
चौके के कोने में पड़ी
चावल की माढ़ सी
कोई सोच ज्यादा देर
ठहर ही नहीं पाती!

तुम्हारा एक खयाल
अभी खड़ा ही हुआ था कि—
फिसल गया कोनों से
सोचों का डगमगाना
साफ स्पष्ट देख पाती हूँ!

चिन्तन की शुरुआत में तो
तुम्हीं थे आसपास,
अब देखती हूँ
पंछी की तिरती
उड़ान ने बाँध लिया मन मेरा!

गहराई

प्रिय!

मेरा ये मन
एक खाली बर्तन है
जितना प्यारा
तुम उड़ेलोगे
इसमें समाता
चला जाएगा
छलकेगा नहीं
ये गहरा जो है!

गरलपान

कहवा सी ज़िन्दगी में
केसर सा प्यार तेरा
तन को छलका भी गया
मन को महका भी गया

तभी मैंने जान पाया
मेरे कश्मीरी साथी
ढेर सी तिक्तता लिए
कैसे जी पाते हैं?
इतनी सारी कड़ुआहट
कैसे पी पाते हैं?

गठरी रिश्तों की...!

देखा है मैंने आसपास
रिश्तों का असबाब
अपने कन्धों पर उठाए
बड़ी मुश्किल से
जीवन का सफ़र
काटते लोगों को!

तकलीफ होती है मुझे
उनका ये कष्ट देखकर
जी करता है मेरा
चन्द मीठे रिश्तों को
आँचल में समेटे
निश्चिन्त घूमना!

जब मौक़ा लगा
यादों के पिटारे को
अपने आँचल में बँधी
चाभी से खोलो
रिश्तों की दुआ-सलाम की
फिर उन्हें सहेज लिया
अगली मुलाक़ात के लिए!

गीत

कुछ बिलकते लम्हे
जमा हुए
आँखों में आँसू के
समंदर तैर गए
जुबान पर पड़े ताले फिर भी
न खुल पाए
तब कहीं जाकर मेरी मुट्ठी में
तुम आए
हैरत नहीं है कि ऐ गीत
जो तुम इतने हो अज़ीज़!!

हेमन्त

जब-जब मैंने
हेमन्त की अगवानी करते
ज़मीन पर मखमली कालीन बिछाते
इन रंगबिरंगे पत्तों को देखा है

तब-तब मुझे लगा है
ऋतुराज को बाँहों में
भरने को व्याकुल हम
पतझड़ के स्वागत को
अक्सर अनुदार
क्यों हो आते हैं?

उनका ये अनोखा दर्शन
क्यों इन आँखों से
अनदेखा छूट जाता है?

रेखा मैत्र का यह तीसरा कविता-संग्रह 'उस पार' मात्र संख्या की दृष्टि से उनके काव्य-विकास को पुष्ट करता है बल्कि गुणवत्ता के नजरिये से भी उनके रचनाकार के प्रौढ़ होते जाने का प्रमाण प्रस्तुत करता है। यहाँ हम अपने आसपास पर गहरी नजर रखने वाले और आसानी से उसे शब्द देने वाले रचनाकार की रचनात्मक प्रतिभा को देख सकते हैं। जीवन के छोटे-छोटे मार्मिक अनुभव यहाँ काव्य-अनुभव बन गए हैं—'कई बार सोचा है मैंने अपनी हँसी और आँसू की चाबी। तुम्हें क्यों दे रखी है ?'

कोई जल्दबाजी इनमें नहीं है बल्कि ठहरकर-परखकर शब्दबद्ध करने की व्यग्रता यही है। यह विकलता अच्छी लगती है। एक मायने में यह रचनाकार के रचनात्मक संघर्ष को भी झलकाता है।

छोटे-छोटे वाक्यों में रची इन कविताओं में जीवन की सच्चाईयों को जीवन की आंतरिक लय के साथ पकड़ने का उपक्रम किया गया है :

'सघन वन के बीच कहीं
चुपचाप बहती झील-सी
में भी रह सकूँ कभी
किसी कोने में अकेली।'

यहाँ सतही तौर पर कह सकते हैं कि मुक्त छंद हैं लेकिन मूलतः यह कविताएँ लिटिकल कविताएँ हैं। छंद की गहरी और अप्रत्यक्ष उपस्थिति इनमें महसूस की जा सकती है। दरअसल यहाँ मुक्त जीवन के स्वच्छंद छंद को शब्दों में लाने का प्रयास यहाँ देख सकते हैं।

यह कौशल बड़े परिश्रम और साधना से अर्जित किया जाता है सतत अध्यापन-मनन इसके लिए आवश्यक है—

'कभी-कभी, किसी-किसी को
बचपन, जवानी और बुढ़ापा
एक साथ जीते देखा है। तब लगा है, उससे पूछूँ
उम्र के पिछले मोड़ों पर
उसने क्या किया है।'

यह बड़ा अनुभव रचनाकार ने साध लिया है। इसके लिए उसने कोई अतिरिक्त प्रयास नहीं करने पड़े बल्कि वह सहज ही जटिलता के बीच सरल-सहज जीवन को देख-समझकर व्यक्त करने में अपने सामर्थ्य का परिचय देती हैं।

रेखा मैत्र

रेखा मैत्र का जन्म बनारस (उ.प्र) में हुआ। प्राथमिक शिक्षा बनारस में होने के बाद आपने सागर विश्वविद्यालय से हिन्दी साहित्य में एम.ए. किया। तदनन्तर, मुम्बई विश्वविद्यालय से टीचर्स ट्रेनिंग में डिप्लोमा प्राप्त किया। इसके अलावा, आपने केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा में प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण के विशेष कार्यक्रम में भाग लिया। कुछ समय तक मध्य प्रदेश में आयोजित 'अमरीकी पीस कोर' के प्रशिक्षण कार्यक्रम में अमरीकी स्वयंसेवकों को आपने हिन्दी भाषा का प्रशिक्षण दिया। फिर 5-6 वर्षों तक राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार के मुम्बई स्थित हिन्दी शिक्षण योजना के अन्तर्गत विभिन्न केन्द्रीय कार्यालयों/उपक्रमों/ कम्पनियों के अधिकारियों और कर्मचारियों को हिन्दी भाषा का प्रशिक्षण दिया।

अमरीका में बसने के बाद आपने अमरीका स्थित 'गवर्नेस स्टेट यूनिवर्सिटी' से कुछ ट्रेनिंग कोर्स किए और कुछ समय तक वहाँ अध्ययन कार्य किया। फिर कुछ समय के लिए आप मलेशिया में रहीं और अमरीका में अंकुरित काव्य-लेखन यहाँ पल्लवित हुआ। आजकल आप फिर अमरीका में हैं और यहाँ भाषा के प्रचार-प्रसार से जुड़ी साहित्यिक संस्था 'उन्मेष' के साथ आप सक्रिय रूप से जुड़ी हैं और काव्य-लेखन में मशगूल हैं।

इन्तज़ार...!

अक्सर, मैं गोरी चाँदनी रातों में
सपने बुना करती हूँ
नीली चाँदनी में नहाया जिस्म
नीलम सा निखर आया है
अपना चेहरा देखने को
झील में जो झाँका है
नदी में चाँद
मेरे माथे के झूमर सा काँपा है
मुझे अपने मानस प्रिय की
चिर प्रतीक्षा है!
वो आता ही होगा
रात ढलने से पहले...!

इतना ज़हर...?

इस धरती के नीचे
एक शेषनाग रहता है
ऐसा मैंने बचपन में
एक दंतकथा से जाना है।
क्या उसका ज़हर ही
इन दिनों माहौल में
उतर आया है?
जहाँ देखो, विष
उगला दिखाई देता है।
कभी युद्ध की सूरत में
विष बुझे तीर नज़र आते हैं।
कभी विषैले वाक्य
मन को चीरते चले जाते हैं।
एक शेषनाग और इतना ज़हर?
अक्सर ये ख़याल
मन के बादलों में घुमड़ता है!

जान न लें...!

वो सिर्फ इसलिए नहीं हँसा
कहीं लोग देख न लें
कितने दाँत उसके मुँह में हैं?
वो सिर्फ इसलिए नहीं बोला
कहीं लोग जान न जाएँ
कौन से ख़्याल उसके दिमाग में हैं?
वो सिर्फ इसलिए नहीं रोया
कहीं लोग समझ न जाएँ
कोई दुःख उसे भी खाता है।
हैराँ हूँ मैं ये देखकर
अपने को छिपा रखने की कोशिश में
तमाम उम्र काट दी उसने!!!

झरोखा

मुझे हमेशा लगा है
अपनी सोच पर
प्रवेश निषेद्ध की तख़्ती
लटकाकर मन का दरवाजा बन्द कर दूँ

फिर कोई भी क्यों न हो
उसका आना वर्जित ही रहे
तब भी सूराखों से
तथाकथित मित्र
ताक-झाँक करते रहे
तो क्या करूँ?

मन होता है मेरा
उन्हें कहने का
लाइलाज नासूर
ढके-लपेटे सह लिए जाते हैं
उघड़े हुए नहीं!

झील

सामने झील बहती है!
उसमें एक बत्तख परिवार
कई जोड़े मेढ़क
और भी न जाने कौन-कौन बसता है?
झील को पत्ते-पत्ते की ख़बर है
पिछले ग्रीष्म गाड़ी के नीचे
बत्तख का नन्हा आ गया
इस बरसात में मेढ़क की
प्रेयसी को साँप खा गया
और...अब मेढ़क उस
साँप की तलाश में है
ताकि साँप उसे भी खा ले
कम-से-कम किसी सूरत में तो
वह अपनी प्रियतम से मिले!
मैं भी उस झील सी
अपने आसपास के
सुख-दुःख की कहानी
समेटे जीती हूँ!

काट-छाँट चोले की...

मैं क्यों करूँ शिकायत
जो मेरे कुछ तथाकथित दोस्त
तुम्हें मुझसे छीनने की कोशिश करें!

हाँ ये अहसास कभी
सालता है मन को
ऐसा क्या नहीं दिया मैंने
जो तुम्हें मुझसे
उन तक खींचता रहा!

फिर उधेड़ती हूँ
अपने अस्तित्व की सींवन
नए सिरे से काट-छाँट करने को
अपने इस चोले की!

खाली डिब्बा

कुछ जीवन
भटकते हुए
खाली डिब्बे से
लुढ़कते हुए
आने-जाने वालों की
ठोकरों से
दिशाएँ बदलते रहते हैं!
उनकी पहचान
इसी धक्का-मुक्की में
कहीं न कहीं
गुम हो जाती है।
रह जाती है
ख़ाली आवाज़
चीखती सी
खाली डिब्बे सी!

खोज

वृक्ष की सशक्त शाखों सी
बाँहें दो याद आईं
फिर ख़याल आया
प्यार पाना नहीं, देना है!
इतना सब जानते भी
कुछ-कुछ रह जाता है
मैंने कहाँ जाना था
देने और पाने में
ये भी ज़रूरी है जानना
जो मैंने दिया है
क्या तुमने पाया है?
उसी पूर्णता की तृप्ति
तुम्हारी आँखों में खोजती हूँ!

खुशी

तैयारी तो की थी खूब
स्वागत् के उसकी
मन के दरवाजा पर
वंदनवार बाँधे
ड्योढ़ी पर प्यार के
स्वस्तिक भी आँके
दूर कहीं उसको
झलक भी देखी थी
फिर पता नहीं कौन सी
अनहोनी घटी
आँगन में आई नहीं
दहलीज़ से लौट गई!

क्षणिकाएँ

1. आम सा इंसान हूँ मैं
खास न बनाओ मुझे
अलग-सा बनाने में
मेरा परिचय पुँछ न जाए कहीं!

2. जग से मिले नासूर
पिराते नहीं क्यों?
तुमसे मिले नासूर
कभी भरते नहीं क्यों?

3. अलविदा न कह पाने का
दर्द सालता रहा
अलविदा कहने की
कोशिश भी नहीं की!

4. दूरियाँ रखते हुए
पास भी तुम आते रहे
नज़दीक दीखते हुए
दूर भी तुम जाते रहे!

क्या?

ये क्या है?
कभी कुछ भी नहीं होता
और, हम उदास होते हैं

कभी...
कुछ भी नहीं होता
और हम खुश होते हैं
वो क्या है?
काश! पता होता
तो खुशी का खज़ाना
मेरे हाथ लग जाता!

मील का पत्थर

हादसों के बीच
गुज़रती गई ये ज़िन्दगी
रास्ते खुद अपने
बनाती गई ये ज़िन्दगी
दर्दनाक वाक़यों ने
मोड़ा इसे कई बार
हँसते हुए हर मोड़ को
पार करती गई ज़िन्दगी
हैराँ हूँ मैं इसकी
सूरत को देखकर
हादसों को मील का पत्थर
बनाती गई ज़िन्दगी!

मेरा ख़्याल...!

तुम जो बार-बार पूछती हो
अपने बारे में मेरा ख़याल
तुमको शायद मालूम नहीं
ख़ुद से ख़ुद के बारे में
जानना एक दिलचस्प तजुर्बा है!
पर...
जब ज़िद है तुम्हारी
मुझसे सुनने की
तो कहूँ–
तुम्हारे भीतर प्यार का
अथाह समन्दर लहराता
देखा है मैंने!
साथ-साथ देखा है
तुम्हारा उसे रोड़े लगा-लगाकर रोकना
कभी तुम्हारी असुरक्षा
कभी स्वयं को बचाने की
बेमानी सी कोशिश
चाहें भी तो उसे
रोक नहीं पाएँगी
तुम्हें उन सारे प्रयासों को
बन्द कर देना है
यही मुझे तुम्हें
बताना है!

मुखौटे के पीछे...!

उसने एक अजीब सी
नेमत बख़्शी है मुझे
लोगों के चेहरे
मेरे सामने अक़्सर
बेनकाब हो जाते हैं!

मुखौटे के भीतर से
उनके सही चेहरे
उघड़ आते हैं!

कहीं इन आँखों के
कैमरे में एक्स-रे
मशीन तो नहीं
जो भीतर की तस्वीर
साफ़ उतार लेती है!

मुलम्मा

कुछ ऐसे रिश्ते भी देखे
बाहर से जगमगाते, खिलखिलाते
भीतर से बिलकते
कुछ उन बर्तनों से
जो हैं तो पीतल के
पर मुलम्मा है उन पे सोने का!

नई फ़सल...?

कभी मन की ज़मीन
बाँझ हो जाती है जब
कोई अहसास नहीं जनमता तब
न जन पाने की
पीड़ा ही सिसकती है!
वहीं साँसों की सूरत में सुलगती है
सिर्फ़ एक आस लिए
अगली फसल की...!

नन्हें पार्थ के लिए...!

असीम शक्ति पुंज पार्थ!
तुमने मेरी बांहों का
सिरहाना लेकर जो सोना चाहा
तुमने मेरी बाँहों में खुशबू पाई
जानती हूँ तुम्हें ममता की महक आई!

शताब्दियों पहले
कुंती की बाँहों ने जो सुख
बहुत कष्ट उठाकर पाया
मुझ तक अनायास ही आया
आज तुमने इन बाँहों को धन्य कर दिया

निवेदन

कलम से मेरी दोस्ती बहुत देर से हुई! लम्बा वक़्त हाथ से यूँ ही फिसलता रहा! इन दिनों वक्त को पकड़ रखने की कोशिश सी है। अस्तु, तीसरा कविता-संग्रह आपके हाथों में! मेरी कविता यात्रा का तीसरा पड़ाव 'उस पार...' पाठकों को अपनी जीवन यात्रा तक ले जाएगा या नहीं—पता नहीं!

—रेखा मैत्र
1 मार्च, 2000

ऊष्मा

चारों ओर फैली
भुरभरी बरफ में
दूर-दूर तक किसी
पंछी तक का
नामोनिशान नहीं!
इन नंगे से खड़े
ठंड से ठिठुरते
पेड़ों के बीच–
सिर्फ एक मैं हूँ
जो निश्चित खड़ी हूँ
क्योंकि
एक ऊष्मा है मेरे आसपास
जो किसी तापमान पर नहीं जमती
तुम्हारी ऊष्मा...!!!

पेंटिंग

उसके कमरे में
चारों ओर उदासी
पेंटिंग-सी टँगी थी!
उसकी उँगलियों को
या तो ज़िन्दगी में
शोख-चटखा रंग
भरना नहीं आया
या ज़िन्दगी ही नाइंसाफी
कर गई उससे!
उसकी दवात में
उदास और स्याह
रंग ही रह गए
ज़िन्दगी को
भरने के लिए!

पल

लो, आज मैंने
अपने खुशनुमा पल
हवा में उड़ा दिए!
उनकी महक से
खुशबू फैल गई
इन फूलों में!
उनका नूर बिखर गया
इन पेड़ों पर
जुगनुओं की सूरत में!
ध्वनि उनकी
गूँज गई
संगीत बनकर
हवाओं में!
और अब...
वही सारी
कायनात पर छा गए!

पथराई शाम

दर्द की अलगनी पर
टँगे पल-छिन
दूर-दूर तक फैली
पथराई शाम
ऐसे में कहीं तुम
जो छम से आ जाओ
आँखों से बरसे मेघ से
पत्थरों पर सोंधी खुशबू
हर सूँ बिखर जाए
माहौल फिर खुशनुमा हो आए
ये शाम हसीं रात में तब्दील हो जाए!

फूल परी

कोई एक फूलपरी थी
जिज्ञासु होने की
उसने सजा काटी थी!
सुन्दर उस महल में
सारे कमरे खुले एक बन्द था
उसकी बाल सुलभ उत्सुकता ने
वह कमरा भी खोल दिया
उससे निकल दानव ने
सारा उपवन उजाड़ दिया
दंड में उसे मिला
निर्जन द्वीप का निर्वासन
फूलों की जगह मिला बियावान
उसने अपने पंखों में समेटे
बीजों से फिर बनाया नया उपवन
वहाँ के भयभीत लोगों को दिया नवजीवन
एक अर्से से मुझे भी मिला है देश निकाला
पर लाऊँ कहाँ से फूलपरी का जिगर?
कैसे उगाऊँ यहाँ सूर्ख़ गुलमोहर?

प्रतीक्षा

अतीत की सूखी टहनियाँ
जमाकर, एक ढेर बनाया मैंने!
ऋतुराज के आने का
समारोह कुछ ऐसे मनाया मैंने!
नए पत्तों की आशा में
मृत सूखे पत्तों को जलाया मैंने!
हैरान सी रह गई,
बसन्त का सारी उम्र इन्तज़ार ही किया मैंने!!

परछाँई सच की...!

मेरी बातों में जो तुम्हें
सच की सहमी सी
परछाँई दिखी

यक़ीन जानो तुमने
मुझको तो नहीं ही जाना
सत्य को भी नहीं पहचाना!

सच का भय से
कहाँ नाता है?
सच को तो
बेबाक होना भाता है।

ढक लपेटकर सत्य नहीं
झूठ बोला जाता है
ये भी तुम्हें पता है?

प्यार की इबारत

थका, टूटा मन तुम्हारे द्वार आया
तुमने बड़े जतन से उसको बिठाया
चिरन्तन आवागमन्
पुकारना, मनुहार करना
ये भिक्षुक-सा नाता
मुझे नहीं भाता
यातना के सारे दाग
अधरों से पोंछ दो
सम्बन्धों की स्लेट को
धोकर साफ़ कर दो
फिर इस पर लिख सकूँगी
प्यार की इबारत मैं!

रात

चाँद का झूमर सजाए
रात तुम जाती कहाँ हो?
अपने आँचल में रुपहले तारे टाँके
रात तुम जाती कहाँ हो?
रजनी गन्धा-सी छरहरी दोलसी सी
रात तुम जाती कहाँ हो?
सर्पिणी सी चाल लेकर
नीलमणि आभा बिखेरे
रात तुम जाती कहाँ हो?
कहीं ऐसा तो नहीं
एक रात तुम मुझको डसोगी
ठीक से बोलो
मेरी ऐ रात!
रात तुम जाती कहाँ हो?

समय

काल शिशु-सा दीख पड़ता
कभी चलना लड़खड़ाकर
कभी भागे पवन बनकर
कभी नन्हें सा लपककर
सबको लट्टू सा नचाता
कभी मरता नहीं
केवल बीत जाता!

संदेश

नीले पर्दों से छनकर आती
हल्की-सी चाँदनी लगी बतियाने—
लोग कैसे-कैसे भरम पालते हैं
अपना होना न होना अहम् मानते हैं
देखते हैं रोज़ झरते पत्तों को
पर, उनका संदेश नहीं जानते हैं
खड़खड़ाते पत्तों ने लड़खड़ाती आवाज में कहा
हमारा टूटना-बिखरना नए पत्तों की जगह बनाना है
पर, अदना-सा आदमी
ये सब कहाँ सुनता है?
अपनी अहमियत के रोज़ नए झंडे गाड़ता है!

संघर्ष

ऐसा भी होता है कभी?
सूरज रोशनी की तलाश में
मारा-मारा फिरे
चाँद शीतलता की खोज में
भटकता फिरे
नदी का प्यास के मारे
गला सूखा करे
किसी मसीहा को सद्यजात शिशु सा
जब साँसों के लिए जूझते देखा, तो लगा—
हाँ कभी ऐसा भी होता है!

संताप

तुम्हारा संताप
जब मेरा बना
मुझे पता ही न चला
मेरी शिराओं में
कैंसर सा फैलता गया
अब वो मुझमें सिर्फ
संताप बनकर जीता है!
ना मेरा, न तुम्हारा!!

सन्तुलन

ये तो अच्छा हुआ
जो ये तन माटी का हुआ
सारी यातना जो गटाक से
कड़वी दवा-सी पी ली
वो ढेर सारे रंध्रों से आहिस्ता-आहिस्ता निकली!

गर सूराख न होते
भीतर की पीड़ा बम के गोले सी फटती
दूर-दूर तक राख बिखरती
अब सन्तुलन तो है दर्द के
आगमन और निर्गम का!

सपने

अरे ऐ चाँद!
तुम क्यों आसमानों की गली से
बादलों के रथ पे बैठे जा रहे हो?
कभी ओझल, कभी तुम दीख पड़ते हो
तुम्हारी राह में, ये टिमटिमाते से सितारे
धूल की मानिंद उड़ते जा रहे हैं!
तुम्हारा रथ क्यों भागा जा रहा है?
तुम्हें क्या रात से मिलने की जल्दी है?
तुम्हारी रात का आज मुझसे मिलने का तकाज़ा है
वो मेरी एक अच्छी-सी सखी है
कभी जब तुम नहीं होते
हमारी बात होती है।
आपबीती कहने की बस रात होती है!
उसकी प्रतीक्षा में शामिल हो तुम!
मेरी प्रतीक्षा में शामिल हैं ख़्वाब!

सीलन

मिलना तो था मुझे
कहना भी था कुछ तुम्हें
कहने और सुनने के अभाव में
बातों की गिरह बाँधी
बक्से में धरा उन्हें
कमरे में रख आई!

फिर सोचा, भीतर ही भीतर
रहने से सीलन लग जाएगी
खुले आसमान के नीचे
ममता की हवा में
सूखने को डाल आई!

बासी गंध जब निकल जाए
धूप की ताज़गी भर आए
तब उन्हें समेटकर
वापस धर देना है
रिश्तों को देर तक
ताज़ा यूँ रखना है!

●●●

शोर

कभी लफ्ज़ों का
शोरगुल
मेरी भीतरी मैं को
इस कदर परेशान
कर डालता है कि
वो उन्हें स्कूल से
छूटे बच्चों सा
मेरी लेखनी के पास
भेज देता है
ये सारे नियम
कानून तोड़ते
अपनी बात
ऊटपटांग ढंग से
मेरी लेखनी को
पकड़ाकर
थके बच्चों से
सो जाते हैं!

शृंगार

ऐ ज़िन्दगी देख,
तुझे कैसा सजाया मैंने?
रिसते दर्द की सिंदूरी बिन्दिया लगाई
घुटती साँसों में तेरी धड़कन पिरोई
ग़म के नीलम जड़े तेरी अँगूठी में
यातना में तपे कुन्दन के कड़े पहनाए हाथों में
दुःखों में खिले फूलों को तेरे गले का हार बनाया
उदास शाम की सुरमई साड़ी में तेरा गोरा बदन खिल आया
मेरा मन के दर्पण में देख, तेरा रूप क्या रंग लाया है?

सिसकते सुर

लो सोच के तार
उलझने लगे
मन की वीणा के सुर
सिसकने लगे!
लाख जतन किए
उन्हें मनाने के
सुर थे कि—
रूठे ही रहे
साज़ देखता ही रहा
आवाज़ को बेउमीदी से!

सोचती हूँ...!

अक़्सर मैंने तुम्हें
अपनी मोहताजी का
मातम मनाते देखा है!

तब जी करता है मेरा
चाँद-तारों के तमाम सिक्के
तुम्हारे नाम कर दूँ!

सारी चिड़ियों-चुनमुन के गीत
सारे फूलों की महक पर
तुम्हारा रसीदी टिकट लगा दूँ!

फिर एक जिन्न की
सूरत में तुम्हारे पास
खड़ी होकर पूछूँ
आका! तुम्हें क्या ला दूँ?

ऐसा सब नहीं हो पाता
जानते हो क्यों?
कहीं फिर तुमने मुझे
वापस मेरी सूरत में चाहा
तब क्या करूँगी?

सुबह की चाय

ढेर सी बर्फ के पहाड़ के पीछे
उगते सूरज ने अपनी
भट्टी में रोशनी पकाई है
लगता है कारखाने के मज़दूरों ने
अपने घरों के बाहर
अँगीठियाँ सुलगाई हैं!
और उनका—
धुआँ सारे में फैल गया है
उस आँच में पकी
इस चॉकलेटी चाय के क्या कहने...!
मुँह का ज़ायका गूँगे के गुड़-सा...!

सुख का गुणा

सुख मेरे!
तुम जो मुझे जीवन के
प्रभात में मिल जाते
हम अपने खेल, हँसी, शोर से
गली–घर गुँजाते!
पर–तुम मिले नहीं...!

तुम जो भरी दोपहर में मिलते
हम चटियल धूप ही साथ जीते
साँझ में अलाव पर बैठकर
एक-दूसरे के सुख-दुःख सेंकते
तब–तुम मिले ही नहीं...!

तुम जो विदा की शाम मिले हो
चलो इन भरी मुट्ठियों के अगणित सुख
रीत दें अनगिनत अंजलियों में
और...
सुख का गुणा करें!

स्वयंवर

वृक्ष इन दिनों प्रतिदिन नई-नई
पोशाकें बदलते से दिखते हैं
हरे से पीले, फिर पीले से लाल
वसंत के आगमन की तैयारी में
तय ही जैसे नहीं कर पा रहे
वसंत वधु कौन से रंग में
वरण करना चाहेगी उन्हें
सब तरह से एकदम ठीक-ठाक
लगना चाहते हैं
अपनी प्रेयसी को लुभाने के लिए!

स्वीकृति

मुझको मालूम है–
मैंने पीड़ा पहुँचाई तुम्हें
भीतर के दर्द को
बाहर लाने के लिए
तपते फाहे के सिवा
चारा नहीं था कोई!

फोड़ा जब फूट आए
दर्द से मन निजात पाए
तब तुम्हें बताना है
पीड़ा से निजात माने
पीड़ा से गुज़रना है!

Thumbs.db

टूटते रिश्ते

पढ़ी है मैंने अक़्सर—
उसकी आँखों में उतरी असुरक्षा
कहीं उसके सम्बन्ध टूट न जाएँ
कहीं से चटख़ न जाएँ
सम्बन्धों के रखरखाव में
अहसासों को पढ़ना
यूँ तो ज़रूरी है लेकिन
अगर वो खौफ़ बनकर
आँखों में उतर आएँ
तो देखो उसकी बुनियाद की मज़बूती
यही कहना चाहा है मैंने अक़्सर!

त्रिकाल

कभी-कभी, किसी-किसी को
बचपन, जवानी और बुढ़ापा
एक साथ जीते देखा है!
तब लगा है, उससे पूछूँ
उम्र के पिछले मोड़ों पर
उसने क्या किया?
सही वक़्त पर उसे
क्यों नहीं जी पाया?
फिर सोचा है
कहीं ये बात पूछकर
उसके ज़ख़्म हरे न कर दूँ
जिन सिसकियों को
उसने थपकी दे-देकर
सुलाया है, उसे क्यों जगाऊँ?
जी लेने दूँ
उसे उम्र के सारे दौर
एक साथ!

तुम...

तुम्हारा अस्तित्व पिघलते
देखा है कई बार
अपने वजूद की खामी
माना इसे हर बार!
पर, आज मैंने जाना है
वो बात बेमानी है!
विलीन जो होते हो
तुम मेरे आसपास
दरअसल, तुम्हारी
अपनी चुनी राह है
बाहर से साबुत दीखना
तुम्हें भीतर से नहीं भाता
इसी से मुझ तक आते-आते
तुम, तुम ही रह जाते हो
कोई और, हो नहीं पाते
अस्तु, तुम नहीं
तुम्हारा अहम् विलीन होता है!

उम्र सम्बन्धों की...!

उसके सम्बन्ध चल बसे
सुनकर उदास होना था
हो नहीं पाई!

राहत की साँस ली मैंने
मुर्दे में जान फूँकने
उस जिन्दा मानने की
उसकी पागल ज़िद ने
मुझे ख़ामोश रखा था!

रिश्ते भी आदमी की तरह
अपनी एक उम्र ही जी पाते हैं
कभी बुढ़ापे तक तो कभी
बचपन में ही मर जाते हैं।

अच्छा हुआ, जो उन्हें फूँक आया
वर्ना लाश की बू फैलती
अर्थी तो अब उठाई है उसने
जान तो कब की जा चुकी थी कहीं!

उपेक्षा

जब-जब तुमने मुझको
देखकर नहीं देखा
मुझको मालूम है
बहुत देर तलक देखा है।
जब भी तुमने मुझे
अनुछुआ छोड़ दिया
देर तक तुम्हारी आँखों का
स्पर्श महसूस किया है
ये क्या माजरा है?
तुम करते हो कुछ और
यहाँ घटता है कुछ और...!

उस पार...

कैसा तो लगता है सोचना—
कभी काल की विराट नदी में
मेरी कश्ती जब उस पार जा लगेगी
इस पार मेरी देह तब नहीं होगी
मेरी सत्ता का ऐलान करेगी मेरी कविता
न हो उसकी पहुँच
किसी बड़े पुस्तकालय या संग्रहालय में
फिर भी कुछ कंठ उसे गुनगुनाएँ
चन्द आँखें उसे पढ़ें-समझें
कई चेहरे उसमें, मायने पाएँ
इस तरह मेरी सार्थकता ज़िन्दा रहेगी
या फिर कहीं यूँ हो कि...
मेरी कोई अधूरी छूटी कविता
किसी के हाथ आ जाए
वो उसे माने दे पाए
उसके अर्थ मेरे ख़्याल से
मेल खा जाएँ
और
कविता के ज़रिए
नदी के दो द्वीप मिल जाएँ।

विश्व विजय

दर्द से जब–
जिस्म के तार खिंचने लगें
गूँजती सी खाँसी
देह के पिंजरे को हिला डाले
तनी हुई शिराएँ जब
सरोद के तारों सी
झन्न से टूटने को हो आएँ
तब कभी खुलकर हँसो–
अजीब-सा विश्व विजय का
अहसास हाथ लगता है तब!

विस्फोट

मन की भीतरी ज़मीन
राजस्थानी रेत सी बाँझ है।
कभी विस्फोट करना हो
इसी का कुछ हिस्सा चुनना होता है
बम की ताकत भी पता चलती है
आसपास की मासूम जानें भी बच जाती हैं
देखती हूँ ज़मीन बहुत कम सी
रह गई है—अगले प्रयोगों के लिए
और सामने ढेरों प्रयोग हैं—
आज़माने के लिए!

वह कमरा

वह कमरा तो ख़ामोश ही था
हठात् उसमें रखी चीजें लगीं बतियाने
उसमें सजे फूलों ने अभिनन्दन किया
तरतीब से धरे कार्ड, शुभकामनाएँ पकड़ाने लगे
हल्की-हल्की रोशनी की फुहारें नहलाने लगीं
चलते हुए पंखे ने अपने स्पर्श से दुलारा
बिखरी हुई किताबों ने इशारे से बुलाया
ये सब भी मेरी ही तरह प्रतीक्षारत थे!

याद बेगम अख़्तर की...!

उनके चेहरे पर
उभर आई
झुर्रियों को बचाकर
उनकी तस्वीर जो लेनी चाही
उन्होंने बताया कि ये
तजुर्बों के निशान हैं उनके
आने वाले सफ़र को
रोशन करने में
दीए से काम आएँगे
आज उनकी गायकी की
रोशनी में
जब-जब नहाती हूँ
उनकी यादों के चराग
अपने आसपास
महसूस करती हूँ!

ज़िन्दगी के धागे

तार-तार बिखरे
ज़िन्दगी के धागे
समेटकर
एक खूबसूरत
पोशाक बनाकर
ज़िन्दगी को पहनने का
बड़ा मन है मेरा
पर...
इन उलझे-उलझे
रेशों को सुलझाऊँ कैसे?

नाते-रिश्ते

ज़िन्दगी के दरख़्त पर
ये खिले-खिले रिश्ते
अगर कभी
अगर कहीं
झरें तो हरसिंगार से
देर तक दिल और दिमाग को
महकाते रहें!
या फिर यूँ हो—
जो बबूल बनें
तो चुभन नहीं, ठंडी छाया से
सुकून पहुँचाएँ!